International Research Journal ISSN-0975-3486 VOL. I * ISSUE—6 RNI : RAJBIL/2009/30097

शोधपत्र-राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन

March, 2010

वर्तमान संदर्भ में गाँधी के आत्मबल की आवश्यकता

* प्रो. नीताबोरा शर्मा

*राजनीतिक विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

युगदृष्टा हमारा मार्ग दर्शन करते हैं। गाँधीजी भी युगदृष्टा थे, कर्मयोगी थे। उन्होंने अपने विचारों के लिए कभी मौलिकता का दावा नही किया। वे हमेशा यही स्वीकारते थे कि उनके विचारों में कोई विशेषता नही है। सम्भवतः कर्मयोगी का यही भाव होता है, पर उसकी मौलिकता हमेशा विद्यमान रहती है। इसी कारण 'हिन्द स्वराज' जो मात्र 96 पृष्ठों की पुस्तक है, 100 वर्षो के बाद भी उसका हर पक्ष हमें ग्राह्य लगता है। सम्भवतः इसी कारण अमेरीकी लेखक लुई फिशर गाँधी को देख बरबस कह उठे थे–'जिस व्यक्ति के पास धन है, न राज्य की सत्ता उनका इतना राष्ट्रीयव्यापी प्रभाव कैसे हो सकता है।'

गाँधीजी का महत्व इस बात में नही है कि वे राष्ट्रीय संग्राम के महान नेता थे बल्कि इस बात में है कि वे निरन्तर सत्य की ओर बढ़ते रहे। गाँधीजी का ध्येय था सत्य, धर्म था अहिंसा तथा कर्म था सत्याग्रह। आज हम आतंकवाद तथा हिंसक राजनीति के दौर से गुजर रहे हैं ऐसे समय में गाँधीजी का दर्शन प्रासंगिक है। गाँधीजी वह पहले मानव थे जिन्होंने व्यक्तिगत सम्बन्धों से परे सामाजिक–राजनीतिक प्रश्न को हल करने में आत्म बल का प्रयोग किया और यह सिद्ध भी कर दिया कि आत्मबल द्वारा समस्याएँ न केवल सफलतापूर्वक सुलझाई जा सकती है बल्कि इस तरीके से समाज को जन–धन की हानि भी कम उठानी पड़ती है, पर आज ऐसा लगता है कि हम भारतवासी गाँधीजी की इस देन को भूलते जा रहे हैं। गाँधीजी की अहिंसा का नाम मौके बेमौके अवश्य लिया जाता है पर वह बल उत्पन्न होता नही दिखता जो गाँधीजी की अहिंसा संचार करती थी। इसका कारण है अहिंसा का सत्य से अलग–थलग पड़ जाना क्योंकि अहिंसा में बल आता है सत्य से। अहिंसा गाँधीवादी चिन्तन का मूल सिद्धान्त है। गाँधी जी ने किसी भी सामाजिक अर्न्तविरोध को उसके वास्तविक अर्थ में विरोधी नही माना अपितु उनका विश्वास था कि हिंसा अन्याय के विभिन्न स्वरूपों की, अस्वीकृति नहीं, स्वीकृति और पूरक है। गाँधीजी का मानना था कि 'जो व्यक्ति को नष्ट करना चाहते हैं, व्यक्ति के दुर्व्यहारों को नहीं, वे स्वयं उन दुर्व्यहारों को अपनाने लगते हैं। वे ऐसा इसलिए करते है क्योंकि उन्हें लगता है कि ऐसे व्यक्तियों के नष्ट हो जाने से उनके दुर्व्यवहार भी नष्ट हो जायेगे। वे यह नहीं जानते हैं कि बुराई की वास्तविक जड़े कहाँ हैं। गाँधी का अहिंसा का सिद्धान्त सत्य के साथ जुड़ा है। गाँधी का मूल लक्ष्य सत्य की खोज करना था। वे ईष्वर को सत्य का प्रतीक मानते थे और ईष्वर को जानने अथवा सत्य तक पहुँचने का एक मात्र साधन अहिंसा ही हो सकता है। गाँधीजी की दृष्टि में सत्य लक्ष्य था और अहिंसा साधन। साधन में आस्था और प्रतिबद्धता के अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नही थी। अहिंसा का अर्थ केवल किसी को हानि न पहुंचाना ही नही था, बल्कि बुरे व्यक्ति के साथ भी अच्छा व्यवहार करना था पर गाँधीजी ने स्पष्ट किया था 'अहिंसा का तात्पर्य यह नही है कि बुरे व्यक्ति को गलत काम में सहायता दी जायें। अपितु प्रेम द्वारा गलत काम करने वालो का ह्रदय परिवर्तन किया जायें, ऐसे व्यक्ति का प्रतिरोध करो उससे सम्बन्ध तौड़ लो।'

इसी कारण गाँधी के साधनों की पवित्रता पर बल दिया। साधन पवित्र होने से हमारे मन सशंकित नही रहता और हमारा आत्मबल बढ़ता है। गाँधी ने 1908 में हिन्द स्वराज्य में लिखा था 'आपका तर्क ऐसा हे जैसे एक जहरीला पौधा लगाने के बाद हम गुलाब का फूल निकल आने की आशा करें.. । साधनों की तुलना बीज से की जा सकती है, लक्ष्य की पेड़ से.. हम ठीक वही काटते हैं जो बोते हैं। वास्तव में आज समाज में हम सामाजिक मूल्यों से भटक रहे हैं। लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था का संचालन भ्रष्टाचार, धन, बाहुबल, हिंसा, असंसदीय भाषा–व्यवहार जैसे गलत साधनों से हो रहा है। सच्चा लोकतन्त्र कभी भी असत्य और हिंसात्मक साधनों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। हिंसा की परिणति अनिवार्य रूप से अत्याचार और शोषण में होती है। सत्य व अहिंसा के सम्बन्धो को दृढ़ बनाने के लिए गाँधी ने कष्ट–सहन के अपने सिद्धान्त सत्याग्रह का निर्माण किया। पर कष्ट सहन करना असमर्थता का पर्याय नही हैं, अपितु गाँधी ने ऐसे लोगो की प्रशंसा की जो, हिंसा का प्रयोग करने की स्थिति में तो थे, पर उन्होंने ऐसा नही किया और अहिंसा का सहारा लेकर कष्ट सहन करने की अपनी तत्परता प्रकट की। पर कायरता व हिंसा में से किसी एक का चुनाव

करना हो तो गाँधी का मानना था हिंसा को चुनो। इस बात से व्यक्तित्व की दृढ़ता झलकती है। कमजोरी नहीं।

सत्याग्रह का अर्थ है सत्य का आग्रह, यह आग्रह रखने से मनुष्य को अतुल बल मिलता है। सत्याग्रह एक गतिमान शक्ति है क्योंकि उसमें अन्याय के विरूद्ध संघर्ष के रूप में कर्म पर बल दिया गया है। हिन्द स्वराज्य में गाँधीजी ने सत्याग्रही के आवश्यक गुण सत्यनिष्ठा या ईमानदारी, निर्भयता, ब्रहमचर्य, अपरिग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, सभी धर्मो को समभाव से देखना, स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निवारण, विरोधी के हृदय को अन्तःकरण की आवाज के प्रति जागृत करना प्रत्येक सत्याग्रही का साध्य है।गाँधीजी सत्याग्रही के साधन बताये—असहयोग, सविनय कानून भंग, उपवास, समाजिक बहिष्कार। इस प्रकार गाँधीजी ने अपने जीवन में आध्यात्मिकता और नैतिकता को प्रधानता दी थी। रमणमूर्ति के शब्दों में—'सामाजिक परिवर्तन की गाँधी की कल्पना यह थी कि संघर्ष को उभारा जाय, जिससे अहिंसात्मक साधनों के द्वारस उसे सुलझाया जा सकें। सत्याग्रह संघर्ष को एक सर्जनात्मक आक्रोश का रूप देता है, जो अहिंसात्मक तकनीक का एक आवश्यक अंग है।'

गाँधी के दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष उनकी यह मान्यता थी कि यदि समाज अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग है तो राज्य को, यदि तह गलत मार्ग का अनुकरण करें तो सही मार्ग पर लौटा लाने की क्षमता समाज के पास है, पर यदि समाज निर्बल व असंगठित है और अधिकारों के प्रति जागरूक नही है तो लोकतांत्रिक राज्य के लिए भी व्यक्ति के अधिकारों को कुचल देने की प्रवृत्ति का विकास कर लेना स्वाभाविक हो जाता है। गाँधी का यह कथन भी स्वीकार योग्य है जो उन्होंने रचनात्मक कार्यकत्ताओं से कहा कि – 'वे सत्ता की राजनीति से अपने को अलग रखें, जितने भी क्रियाशील संगठन है, उन्हें अपने साथ ले लो, अपने में से सारी गन्दगी दूर कर दो, सत्ता प्राप्ति करने के विचार को मन में आने भी न दो.. इसी में मुक्ति है...।'

गाँधी के सम्पूर्ण चिन्तन में कहीं भी कोई भी विचार व्यक्ति के मनोबल को कम नही करता है। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त संवेदनशील था। वह एक व्यवहारिक व्यक्ति थे, और यथार्थता के बोध से बंधे इसी निष्कर्ष पर पँहुचे थे कि हिंसा के द्वारा किसी प्रकार का समाधान सम्भव नही हैं। आज के हर मंच में विष्व शान्ति व हिंसा के विरोध की ही प्रतिध्वनि सुनाई देती है। आज विष्व को काल्पनिक आदर्शो की उतनी आवश्यकता नही है जितनी परिवर्तन लाने के साधनों की। एस. पी. वर्मा का विचार समीचीन है कि 'तकनीक और संस्कृति के बीच आज जो विष्वव्यापी संघर्ष चल रहा है, उसका समाधान करने की क्षमता न तो पश्चिम के पास है और न साम्यवादी विष्व के पास। समाधान गाँधी के साधनों के द्वारा ही सम्भव हो सकता है...।' गाँधी ने स्वयं 1936 में सांवली संघ में प्रवचन देते हुए कहा था –'मैं किन्हीं नये सिद्धान्तों या किसी मत को चलाने का दावा नही करता मैंने तो केवल अपने ढंग से आधारभूत सच्चाईयों को अपने नित्यप्रति के जीवन एवं समस्याओं पर लागू करने का प्रयत्न किया है। मैंने जो मत बनाए तथा निष्कर्ष निकाले वह अन्तिम नही है...।' निःसन्देह यही युगदृष्टा की पहचान है।

जैनेन्द्र कुमार ने उचित ही लिखा है—पराक्रमी गाँधी को हम अपने कर्म से दुनिया के सामने नहीं सके हैं। राष्ट्र नीति के द्वारा उनको प्रस्तुत करने में देश और नेता असमर्थ हुए हैं। इसलिए राष्ट्र जीवन में से उनकी झलक देने और लेने का प्रयास गाँधी के व्यक्तित्व को और अधूरा बनाता है। आवश्यक है कि उनके रूप अन्तरंग सत्य को लेकर एक नई समग्र जीवन नीति के प्रतीक के रूप में गाँधी को दुनिया के समक्ष लाया जाये। हम ऐसा कर सकते हैं बस अपने आत्मबल को जगाना है।

संदर्भ ग्रंथ

1–कुमार जैनेन्द्र, अकाल पुरूष गांधी, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1968 2– तेंदूलकर डी.जी., महात्मा– लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द्र गाँधी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1960 3– कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 1963 4– रमणमूर्ति वी.पी., गांधियन कोसेप्ट आफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल चेंज, 1970 5– त्रिपाठी प्रतिमा, गांधी जी का सत्याग्रह, उदृत जर्नल ऑफ आचार्य नरेन्द्र देव रिसर्च इन्सट्यूट, नैनीताल, 2007–2008 6–वर्मा एस. पी., आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, 1978 7– चन्द्र विपन, समकालीन भारत, अनामिका पब्लिशर्स, 2001